Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-1, June-2018

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रवाद की विभावना

प्रि. डॉ. दिलखुशभाई यु. पटेल
वी. एन. एस. बी. आर्ट्स एन्ड कॉमर्स कॉलेज, वडनगर

'अपि स्वर्णमयी लंका न में रोचते लक्ष्मणः।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।'

'राष्ट्रवाद' संज्ञा को परिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। क्योंकि विभिन्न समाज और संस्कृतियों में इसके कई अलग परिमाण दिखाई देते हैं। अंग्रेजी शब्द 'नेशन' लैटिन भाषा के शब्द 'नेशिओ' (Natio) पर से बना है। जिसका अर्थ है जन्म या जाति। इस आधार पर विद्वानों के एक वर्गने राष्ट्र को समान प्रजाति, कुल और सामान्यतः समान भाषा या सगोत्री भाषा का प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों के समूह को माना जाता है। अगर यह अर्थ स्वीकार करें तो भारत में अनेक राष्ट्र हैं क्योंकि यहाँ विभिन्न प्रजाति, भाषा व धर्म के लोग रहते हैं। यदि प्रजाति को 'विशेष राष्ट्र' की नींव मान ली जाए तो वे विश्व के किसी भी कोने में निवास करतें हो फिर भी वे एक राष्ट्र के निवासी है। परंतु यह अवधारणा भी गलत है। हिटलरने इसी 'राष्ट्रीयता' के आधार पर जर्मनी को विश्वविजेता बनाने का प्रयास किया था।

दूसरे अर्थ में राष्ट्र एक विशिष्ट भू-भाग से सम्बन्ध व्यक्तिओं का वह समूह है; जो विशेषतः स्वयं की एक सरकार प्राप्त करने के हेतु से कार्यरत होते है। भारत की जनताने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध स्वाधीन भारत के लिए ही संघर्ष किया था। इस से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि राष्ट्रवाद केवल पराधीन जनता में ही पाया जाता है।

अतः सैद्धांतिक द्रष्टि से राष्ट्रवाद एक जटिल संकल्पना है। इतिहासकारों की द्रष्टि से राष्ट्रवाद के मूल सोलहवीं शताब्दी में हुए धर्मसुधार आँदोलन में रहे हैं। रोमन कैथलिक चर्च की सार्वभौमसत्ता का विरोध तथा धार्मिक या राजनीतिक - में किसी भी बाह्य सत्ता के हस्तक्षेप को अस्वीकार करते हुए मार्टिन लूथर ने राष्ट्रवाद की आधारशीला रखी। जो क्रमशः पूरे युरोपभर में फैल गई और उसके ही कारण सार्वभौम चर्च की सत्ता ध्वस्त हो गई।

प्रो. हान्स कोहन, प्रो. सी. जे. एच. हेज और प्रो. स्नाइडर जैसे विद्वानोंने 'राष्ट्रवाद' की संज्ञा की संकुलता को समझाने का प्रयास किया है। प्रो. स्नाइडर तो मानते हैं कि राष्ट्रवाद को परिभाषित करना अत्यंत कठिन कार्य है। लेकिन फिर भी इस विषय में उन्होनें जो परिभाषा दी है वह राष्ट्रवाद को समझने में उपयोगी है। उनके मतानुसार, 'इतिहास के एक विशेष चरण पर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व बौद्धिक कारणों का एक उत्पाद - राष्ट्रवाद एक सु-परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करनेवाले ऐसे व्यक्तियों के समूह की एक मनः स्थिति, अनुभव या भावना है जो समान भाषा बोलते हैं, जिनके पास एक ऐसा साहित्य है जिसमें राष्ट्र की अभिलाषाएँ अभिव्यक्त हो चुकी हैं, जो समान परम्पराओं व समान रीति-रिवाजों से संबद्ध है, जो अपने वीरपुरूषों की पूजा करते हैं और कुछ स्थितियों में समान धर्म

रखते हैं।'*

'Encyclopedia Britannica' के अनुसार "राष्ट्रवाद एक ऐसी मनःस्थिति है जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च राजभक्ति उसके 'राष्ट्र-राज्य' के प्रति अनुभव की जाती है।"

जब भारतीय संस्कृति की बात आती है तब कई पश्चिम के विद्वान इस व्याख्या को भूलकर यह मानने लगते हैं कि ब्रिटिश लोगों के कारण ही भारत में राष्ट्रवादकी भावनाने जन्म लिया। राष्ट्रीयता की चेतना ब्रिटिश शासन की देन है और उससे पहले भारतीय इस चेतना से अनभिज्ञ थे। इतिहास के इस एक पक्षीय अध्ययन को हम नहीं स्वीकार कर सकते हैं। वस्तुतः भारत की राष्ट्रीय चेतना वेदकाल से अस्तित्वमान है। राजनैतिक द्रष्टिबिंदु से समझे तो प्रत्येक शक्तिमान भारतीय शासक की महत्वकांक्षा चक्रवर्ती - संपूर्ण भारत के शासक बनने की रही है। यही इस बात का प्रमाण है कि भारत में राष्ट्रवाद की भावना प्राचीन काल से अस्तित्व में थी। अतः यह मानना सर्वथा असत्य है कि राष्ट्रवाद की भावना का पश्चिम में जन्म हुआ और पूर्व के लोग इससे अनभिज्ञ थे। प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के मंत्रों में राष्ट्रवाद के आधारभूत सिद्धांतो का अस्तित्व दिखाई पडता है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में आर्यों की भूमि के रूप में धरती माता का यशोगान किया गया हैं।

'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।'

विष्णु पुराण में तो राष्ट्र के प्रति का श्रद्धाभाव अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता दिखाई देता है। इस में भारत का यशोगान पृथ्वी पर स्वर्ग के रूप में किया गया है।

'अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महागुने।
यतोहि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोग भूमयः।।
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत-भूमि भागे।
स्वर्गांपस्वर्गास्पदमार्गे भूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात् ।।'

इसी प्रकार वायु पुराण में भारत को अद्वितीय कर्मभूमि बताया है। भागवतपुराण में तो भारतभूमि को संपूर्ण विश्व में पवित्रतम भूमि कहा है। इस पवित्र भारतभूमि पर तो देवता भी जन्म धारण करने की अभिलाषा रखते हैं, ताकि सत्कर्म करके वैकुंठधाम प्राप्त कर सकें।

"कदा वयं हि लप्स्यामो जन्म भारत-भूतले।
कदा पुण्येन महता प्राप्स्यामः परमं पदं।"

महाभारत में भीष्मपर्व में भारतवर्ष की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है;

'अत्र ते कीर्तिष्यामि वर्ष भारत भारतम्
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैवस्वतस्य।
अन्येषां च महाराजक्षत्रियारणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारताम्।।'

गरुड पुराण में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अभिलाषा कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है-

'स्वाधीन वृत्तः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि ते मृताः।।'

प्रो. स्नाइडर जैसे विद्वान 'राष्ट्रवाद' के लिए जिन बाबतों को प्राणभूत मानतें हैं वे सभी बाबत प्राचीन संस्कृत साहित्य में दिखाई देती हैं। 'राष्ट्रवाद' के लिए सर्वप्रथम आवश्यक तत्व है भौतिक मातृभूमि। भारतीय भूमि कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैली हुई है। यह विशाल

भूमि प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर है। प्राचीन काल में भारतीयों ने इस सम्पदा का उपयोग आर्थिक द्रष्टि से स्वावलंबी और आत्मनिर्भर होने के लिए किया था। तीसरी बात है अपने देश के प्रति भावनात्मक लगाव। सामान्यतः संस्कृत साहित्य के धर्मतत्व और अध्यात्म चिंतन ने ही इतिहासकारों का ध्यान ज्यादा आकर्षित किया है। सच तो यह है कि भारत की दार्शनिक विचारधारा की समृद्धि ने सबको स्वभावतः चकाचौंध कर दिया है। इसलिए प्राचीन संस्कृत साहित्य में भारत के राष्ट्रीय जीवन के अन्य पहलुओं की, जो चर्चा की गई है उसकी ओर ध्यान नहीं जाता है।

राष्ट्र-निर्माण के लिए सर्वप्रथम गुण है जन्मभूमि के लिए प्रगाढ अनुराग। संस्कृत साहित्य में कई सूक्त एवं प्रार्थनाएँ इस भाव को प्रकट करती है। अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' में ६३ भावनापूर्ण प्रार्थनाएँ हैं। ठीक इसी प्रकार पुराणों में और महाकाव्यों में भी देशप्रेम के सूक्त दिखाई पड़ते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि देशप्रेम की यह भावना का प्रचार-प्रसार प्राचीन काल में किस तरह हुआ होगा? दूसरा यह प्रश्न भी उठता है कि प्राचीन भारत में जो राष्ट्रभक्ति का यह स्वरूप आध्यात्मिक भावना से भरा हुआ है।

अर्थात् राष्ट्र प्रेम की भावना को धर्म की भावना को ही एक रुप माना गया है । भूमि को 'देवभूमि' कहने का यही कारण है । राजा को भी देव का अंश माना जाता था । सभी राजवंश को सूर्य या चंद्र देव के वंशज बताएँ जाते हैं, यह इसी का प्रमाण हे । दूसरा यह तथ्य समझ में आता है कि प्राचीन राष्ट्र भावना संकुचित नहीं थी । उस समय समस्त पृथिवी को अपनी माता मानकर भारतवासी खुद को उसके पुत्र मानते थे । अब प्रथम प्रश्न कि किस तरह भारत मे राष्ट्र भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया होगा ? यह एक सार्वजनिक सत्य है कि किसी भी भावना को धर्म के साथ जोडने पर उसका प्रचार सरलता से और व्यापक तौर पर हो सकता है ।

भारत में बारह जयोतिर्लिंग और बावन शक्ति के मंदिर है । इन सभी स्थलो की भौगोलिक स्थिति देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे एक-दूसरे से काफि दूर है और पूरी भारतभूमि में फैले हुए हैं । सोमनाथ, केदारनाथ, मल्लिकार्जुन और रामेश्वरम् आदि ज्योतिर्लिंग – इन सभी के दर्शन को पवित्र माना गया है । इस तरह प्रत्येक भारतवासी एक-दूसरे से जूड़ जाता है , ठीक इसी तरह प्रातःकाल में स्नान के समय प्रत्येक भारतीय नरमदा, सिन्धु, कावेरी, गंगा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती – इन सात पवित्र नदीओं का नामस्मरण करता है । दूसरी ओर भारतभर के काशी, मथुरा, अयोध्या, द्वारावती, माया, कांची और अवन्ती- यह सात धाम मोक्ष देनेवाले माने गये हैं । जो आदमी मुक्ति चाहता है उसे यह आदेश है कि वह इन सभी तीर्थधामों की यात्रा करे और इन सभी को एक समान पवित्र मानें । मृत्यु के बाद हिन्दु परंपरा में जो कर्मकांड किये जाते हैं उसके लिए भी भारतभर की प्रमुख नदियाँ और उन नदियों के संगम स्थलों को पविक्ष माना गया है । यह स्वाभाविक है कि मृत व्यक्ति की अंतिम क्रिया जिस स्थान पर की जाति है उस स्थान से उसके स्वजन भावनात्मक रूप से जुड जाते हैं । इस व्यक्ति अपनी संकुचित भौगोलिक सीमाओं से मुक्त होकर पूरी भारत भूमि से मानसिक एवं आत्मिक रूप से जुडने लगता है । व्यक्ति चाहे शैव

सम्प्रदाय से जुडा हो चाहे शाक्त से या चाहै वैष्णव से । इन सभी सम्प्रदायों के धर्मस्थान पूरी भारतभूमि में फैले हुए है ।

राष्ट्रभावना केवल धर्मभावना से अनुप्राणित होती तो भारत का पूर्ण विकास होना असंभवित हो जाता । यह सत्य है कि राजनीति मे भी राष्ट्र के विकास के लिए राष्ट्रभावना जागृत करना अनिवार्य माना गया है । भारत जैसे विशाल और विभिन्नताओं से भरपूर देश में बहुत कठिन है । अन्नत विविधताओ से भरपूर, अनेक जाति, अनेक भाषाओं, अनेक धार्मिक विश्वासों और अनेक संस्कृतियों वाले लोगों को एक अखंड मातृभूमि मानना यह इस दिशा में प्रथम चरण रखने जैसा छा । प्राचीन काल में राजाओं के द्वारा वाजपेय यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध आदि यज्ञ किये जाते थे । इस यज्ञ का उद्देश्य केवल धार्मिक आराधना नहीं था, बल्कि छोटे-छोटे अनेक राजाओं को एक समर्थ राजा के छत्र के नीचे लाना था । यहाँ पर विजेता राजा को अन्य राजा भेट-सोगाद देते थे । साथ ही चक्रवर्ती राजा भी अन्य सभी राजाओं की स्वतंत्रता को स्वीकार कर उनके साथ मैत्री रखता था । पराजित राजा की हत्या को अधर्म माना जाता था । इसी तरह चक्रवर्ती राजा और उसके राज्य के द्वारा विविधता से सभर भारतभूमि को राजनैतिक द्रष्टिकोण से भी एकत्व के सूत्र में जोड दिया गया । चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य का द्रष्टांत इस बात का ही संकेत है । रामायण में राजा राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है और महाभारत मे युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करते है ऐसा वर्णन है । चन्द्रगुप्त मौर्य के अतिरिक्त अशोक, समुद्रगुप्त और हर्षवर्धन- यह तीन राजा थे, जिन्हों ने राजाधिराज की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । भारतीय इतिहास में इस तरह समय-समय पर चक्रवर्ती राजाओं के शासन के कारण मातृभूमि की राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता सदा के लिए बनी रही । इसी कारण से प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद अपने पूर्णरूप में विकसित हुआ । यहाँ एक बात पुनः स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि भारत में जो राष्ट्रवाद की भावना प्रचलित थी वह पूर्णरूप से मानव स्वातंत्र्य का आदर करती थी । उसमें अन्य राष्ट्रों की स्वतंत्रता को भी सम्मान दिया जाता था । वर्तमान समय में व्याप्त उग्र राष्ट्रवाद की भावना से प्राचीन भारत का राष्ट्रवाद तत्वतः भिन्न इसी बात पर है । प्राचीन राष्ट्रवाद में राष्ट्रोन्नति के लिए भी धर्म और सत्य को ही मुख्य आधार माना गया है, जब कि उग्र राष्ट्रवाद में इन शव्दों के लिए कोई स्थान नहीं है ।

अतः इस प्रमाणों से इस बात का हमें ज्ञान होता है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य ने धर्म, अध्यात्म और तत्वचिंतन के साथ साथ समाज, राज्य संचालन, मातृभूमि एव राष्ट्रभक्ति की भावनाओं को भी योग्य स्थान दिया गया है और इसी वजह से अनेक आक्रमणों और सत्ता परिवर्तनो के बाद भी भारत भूमि में राष्ट्रप्रेम की भावना जीवंत रह सकी है । इसीलिए हम कह सकतें हैं कि भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीय चेतना को जिवंत रखने का अमूल्य कार्य संस्कृत साहित्य ने किया है ।

संदर्भ ग्रंथ :-

१.'वैदिक समाज और आचार-विचार समीक्षा' - प्रो. विद्येश्वर झा, कला प्रकाशन

२.'हिन्दु संस्कृति में राष्ट्रवाद'- राधाकुमुद मुखर्जी, एस. चन्द एण्ड कंपनी

३.'वेदों में लोक-कल्याण'- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद

४.'आध्यात्मिक राष्ट्रवाद'- डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित, सायन्टिफिक पब्लिशर्स